हिन्दी व्याख्या- उत्तम या श्रेष्ठ सारथि जिस प्रकार अश्वों को संचालित कर, उन्हें अभीष्ट गन्तव्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार जो मन मनुष्यों को, उनके अभीष्ट लक्ष्य तक ले जाने वाला है तथा जिस प्रकार कुशल सारथि रश्मियों से वेगवान् अश्वों की गति को नियन्त्रित करता है उसी प्रकार जो मन मनुष्यों की इन्द्रियों के वेग को नियन्त्रित करने वाला है तथा जो प्राणियों के हृदय में अवस्थित है, जरारहित है तथा अत्यन्त वेगवान् है वही मेरा मन शुभ संकल्पों से परिपूर्ण होवें।

संस्कृत व्याख्या- यथा श्रेष्ठः सारथिर्यन्ता श्रेष्ठसंचालनेन अश्वान् अभीष्टगन्तव्यं प्रति नेनीयते तथैव मनः मनुष्यान् स्वलक्ष्यं प्रति कुशलतया नेनीयते। यथा च सुसारथिः रश्मिभिः वेगवन्तः अश्वान् नियमयति तथैव मनः इन्द्रियाणां वेगं नियमयति। अत्र उपमाद्वयं विद्यते। प्रथमायां नयनं द्वितीयायां नियमनं प्रदर्शितमस्ति। यच्च मनः प्राणिनां हृदि प्रतिष्ठितं जरारहितं अत्यन्त वेगवत् अस्ति। तादृशं मे मनः शुभसङ्कल्पैः परिपूर्णः भवेत्।

टिप्पणियां- अश्वान्- 'अश्नुतेऽध्वानमिति' 'महाशनोभवतीति वा'- यास्क् अर्थात् जो मार्ग को तेजी से व्याप्त करे अथवा अत्यन्त भक्षण करे उसे 'अश्व' कहते हैं।

नेनीयते- √नी नयने + यङ् प्रत्यय। **वाजिनः**- वाज् गतौ +णिनि प्रत्यय। **जविष्ठम्**- √जव् गता + इष्ठन् प्रत्यय।

छन्द- त्रिष्टुप्।

9.3 अथर्ववेद भूमिसूक्त - काण्ड - 12 सूक्त 1 व्याख्या (18 मंत्र)

चारों संहिताओं में अथर्व संहिता अन्यतम है, लौकिक विषयों से सम्बद्ध होने से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट चित्रण अथर्ववेद में हुआ है। इसी को लक्ष्य करके मैक्डोनल ने कहा है कि ''सभ्यता के इतिवृत के अध्ययन के लिये ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलभ्यमान सामग्री कहीं अधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण है।'' अथर्ववेद में पारलौकिक फल-निष्पादक मंत्रो के साथ-साथ लौकिक अथवा ऐहिक फल निष्पादक मंत्रों का भी संग्रह है। आचार्य सायण ने भी अपनी अथर्ववेद भाष्य भूमिका में लिखा है कि -

''व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम्।
ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति॥''

वस्तुतः मानव का जीवन दुःखों से परिपूर्ण है तथा वह उन दुःखों को दूर करने में लगा रहता है। अथर्ववेद में उन समस्त दुःखों को दूर करने एवं सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपायों का निर्देशन है, अतएव अन्य संहिताओं की अपेक्षा अथर्ववेद की लोकप्रियता सर्वाधिक रही है तथा इसके अध्ययन को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है। अथर्व परिशिष्ट में कहा गया है कि ''तिथि, नक्षत्र, ग्रह तथा चन्द्रमा आदि से नहीं अपितु अथर्व संहिता के मंत्रों से समस्त सिद्धियां होती है।[''न तिथिन .... भविष्यति॥'' अथर्व परिशिष्ट 2.5] स्कन्द पुराण में भी कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक अथर्ववेद के मंत्रो का जप करता है उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है।'' [''यस्तथर्वणान् .... ध्रुवम्॥'' स्कन्दपुराण]

राजा के लिए अथर्ववेद का सर्वाधिक महत्त्व है। जिस राजा के राज्य में अथर्व का ज्ञाता निवास करता है, वह उपद्रव रहित होता है, अतएव राजा को चाहिये कि वह अथर्वविद् ब्राह्मण का नित्य दान-सम्मानादि से सत्कार करे।[''यस्यराज्ञो .... समभिपूजयेत॥'' - अथर्व परिशिष्ट]

इसके अतिरिक्त यज्ञ सम्पादन में भी अथर्ववेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। याज्ञिक चार ऋत्विजों में अन्यतम ब्रह्मा का सम्बन्ध अथर्ववेद से होता है। अन्य तीनों ऋत्विज यज्ञ के अन्य पक्ष का संस्कार करते हैं; किंतु ब्रह्मा मन से यज्ञ के दूसरे पक्ष का संस्कार करता है।[गोपथ ब्राह्मण 3/2]

अथर्व शब्द का निर्वचन निरुक्त [निरुक्त – 11.2.17] तथा गोपथ ब्राह्मण में किया गया है कि ''थर्व धातु, जिसका अर्थ कौटिल्य अथवा हिंसा है, में नञ् समास करके 'अथर्व' शब्द की सिद्धि हुई है।'' इस प्रकार अथर्व का अर्थ है– ''जिसमें तनिक भी हिंसा न हो।'' ब्रह्म की प्राप्ति का स्पष्टत: वर्णन करने से इस 'ब्रह्मवेद' भी कहा जाता है। अथर्वण तथा आंगिरस ऋषियों द्वारा अनेक मंत्र दृष्ट हुए अतएव इसका एक अन्य अभिधान ''अथर्वाङ्गिरस'' भी है। 'अथर्वागिंरस' पद की एक अन्य व्याख्या की गई है कि ''जो दु:खों को दूर करने वाले मंत्र है तथा जिनका प्रयोग दूसरों की भलाई के लिए किया जात है वे 'अथर्वण' हैं तथा जिनका प्रयोग दूसरों को दु:ख पहुंचाने – मारण, सम्मोहन आदि में किया जाता है वे 'आंगिरस' कहलाते हैं।'' अवेस्ता का 'अथ्रवन' शब्द अथर्वन का ही प्रतिनिधि है जिसका अर्थ है– ''परिचारक अग्नि।''[गोपथ ब्राह्मण – 1.4]

महाभाष्यकार पतंजलि ने अपने ग्रंथ में अथर्व की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है।[नवधाऽऽथर्वणो वेद: – पश्पशाह्निक] यद्यपि सायण भाष्य, चरणव्यूह एवं प्रपचंहृदय में भी अथर्व की 9 शाखाओं का उल्लेख है किंतु नामों में महती भिन्नता है। वे नौ शाखाएँ निम्न है– शौनक, पिप्पलाद, तोद, मोद, भोद, दायढ़, ब्रह्मपद, अंगिरस तथा देवर्षि। वर्तमान में पैप्पलाद, मौद तथा शौनक– ये 3 संहिताएँ ही उपलब्ध होती है। जिनमें से शौनक संहिता सर्वाधिक प्रामाणिक व लोकप्रिय रही है।

अथर्व में 20 काण्ड 731 सूक्त तथा 5987 मंत्र हैं जिनमें विभिन्न विषयों का समावेश है। अथर्व में प्रतिपादित विचारों का सीधा सम्बन्ध सामान्य जनजीवन से था। अतएव उसमें लौकिक विषयों के सूक्तों की प्रमुखता है।

अथर्ववेद में ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण, अध्यात्म विद्या के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक, आयुर्वेदिक, आभिचारिक, राष्ट्रवादी तथा दार्शनिक विषयों का व्यापक समावेश है। तक्मन ज्वर, बलास, गण्डमाला आदि रोगों का उल्लेख ताथा निवारण के उपाय बतलाये गये हैं तथा गृह निर्माण, हलकर्षण, बीजवपन, अन्नोत्पादन आदि पौष्टिक विषयों की प्रार्थनाएं संग्रहित है। विभिन्न प्रकार के पाप कृत्यों केप्रायश्चित की विधियाँ भी उल्लिखित है।

विवाह, प्रेम तथा काम विषयक सूक्त तत्कालीन सामाजिक धारणाओं का पूर्ण परिचय देते हैं। राज्य से सम्बद्ध विषयों का भी इसमें उल्लेख है– राजा का निर्वाचन, राज्याभिषेक, शासन पद्धति, शत्रुसेना, सम्मोहन, राष्ट्र आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है। काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से भूमिसूक्त, दुन्दुभि-सूक्त, रात्रि-सूक्त आदि अनुपम है। पृथ्वी सूक्त राष्ट्रवादी विचारों के जन्म का सम्भवत: पहला प्रतीक है।

अथर्व में चित्रित संस्कृति मानव समाज के प्रारम्भिक युग से सम्बन्ध रखती थी। शत्रुओं पर विजय पाने के लिए, क्लेशदायी दीर्घ रोग निवारण हेतु, सद्योत्पन्न बालकों व उनकी माताओं को पीड़ित करने वाले आसुरी तत्त्वों के विनाश हेतु नाना अभिचारों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। जादू-टोना आदि तांत्रिक क्रियाएँ आथर्वण-युग की विशिष्ट घटनाएँ हैं।

इसके अतिरिक्त अथर्व में दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन भी उपलब्ध होता है जिनके माध्यम से सृष्टि के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। काल सूक्त, ब्रह्मचारी सूक्त तथा आत्मा का वर्णन आदि दार्शनिकता को

द्योतित करते हैं। काल का परमतत्त्व के रूप में वर्णन किया गया है– काल में ही तप अवस्थित है तथा वही सभी का स्वामी एवं प्रजापति का भी पिता है –

''काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः॥''

ब्रह्मचर्य तत्त्व का भी परमतत्त्व के रूप में विवेचन किया गया है। इस प्रकार अथर्ववेद में अध्यात्म और दर्शन सम्बन्धी विचारों की एक ऐसी सरणी का वर्णन होता है जिसका पूर्ण विकास ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों में हुआ है।

अथर्ववेद

काण्ड : 12 **सूक्त : 1 भूमि : सूक्त**

देवता : भूमि **ऋषि : अथर्वा**

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ १॥

अन्वय– बृहद् सत्यं ऋतं उग्रं दीक्षा तपः ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा भूतस्य भव्यस्य पत्नी पृथिवी नः उरुं लोकं कृणोतु।

शब्दार्थ– **बृहद्** = महान् प्रभाव वाला। **सत्यम्** = सत्यनिष्ठा अथवा वाचिक सत्य। **ऋतम्** = यथार्थ ज्ञान अथवा मानसिक सत्य। **उग्रम्** = तेज। **दीक्षा** = कार्य की योग्यता। **तपः** = धर्मानुष्ठान। **ब्रह्म** = ज्ञान। **यज्ञः** = यज्ञ। **पृथिवीं** = पृथ्वी को। **धारयन्ति** = धारण करते हैं। **सा** = वह (पृथ्वी)। **भूतस्य** = प्राचीन। **भव्यस्य**= भविष्य काल में उत्पन्न होने वाली सृष्टि के पदार्थों की। **पत्नी** = पालन करने वाली है। **सा** = वही भूमि। **नः** = हम उपासको के लिए। **लोकम्** = निवास स्थान को। **उरुम्** = विस्तृत। **कृणोतु** = करे।

हिन्दी व्याख्या– इस पृथ्वी को महान् सत्यनिष्ठा अथवा वाचिक सत्य यथार्थ मानसिक सत्य, तेज, योग्यता, धर्मानुष्ठान, ज्ञान तथा यज्ञ, धारण करते हैं। ये सभी तत्त्व उसके स्वरूप निर्माण में सहायक हैं। वह पृथ्वी समस्त, प्राचीन, अर्वाचीन तथा भविष्य काल के पदार्थों और प्राणियों का पालन करने वाली है। वह हम उपासक जनों के लिए निवासस्थान को विस्तृत और अनुकूल बनावे।

संस्कृत व्याख्या– महती सत्यनिष्ठा, मानसिकीसत्यता, तेजः योग्यता यज्ञानुष्ठानानि, ज्ञानं, यज्ञञ्च पृथिवीं धारयन्ति, तस्याः स्वरूपनिर्माणे योगदानं प्रदन्ति। सा पृथ्वी भूतवर्तमान–भविष्यकालीन पदार्थानामुत्पादिका भवति तान् च परिपालयति। सा पृथ्वी अस्माकं उपासकानां कृते निवासस्थानं विस्तीर्णमानुकूलञ्च करोतु।

टिप्पणी– **सत्यम्**– वचसा यथावद् वस्तुकथनं सत्यम्। **ऋतम्**– मनसा यथावद् वस्तुकल्पनं ऋतम्। **ब्रह्म**–√बृह् बर्हणे+मनिन् प्रत्यय, प्रथमा एकवचन। **यज्ञः**–√यज् नङ् प्रत्यय। **धारयन्ति**–√धृ धारण करना + णिच् + लट्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन। **भूतस्य**– भू + क्त प्रत्यय। **भव्यस्य**– भू + यत्। **कृणोतु**– √कृ + लोट प्रथम पुरुष एकवचन, वैदिक रूप।

छन्द– त्रिष्टुप्।

असबाधं बध्यतो मानवाना यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीया ओषधोर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥ 2॥

अन्वय– यस्याः मानवानां बध्यतः उद्वतः प्रवतः समं बहु असंबाधम्। या नानावीर्या ओषधीः बिभर्ति (सा) पृथिवी नः प्रथतां नः राध्यताम्।

शब्दार्थ– यस्याः= जिस पृथिवी के। **मानवानाम्**= मनुष्यों के। **बध्यतेः** = मध्य से। **उद्वतः** = उन्नति से। **प्रवतः**= अवनति से। **समम्**= साथ से। **बहु** =अत्यन्त। **असंबाधम्**=ऐक्य या मैत्रीभाव है। **या**=जो पृथ्वी। **नानावीर्या** = अनेक गुणों से युक्त। **ओषधीः** = औषधियों को। **बिभर्ति** = धारण करती है (वह)। **नः** = हम उपासकों लिए। **प्रथतां** = समृद्धिस्वरूप बढ़े। **नः** = हम उपासकों के लिए। **राध्यताम्** = अनुकूल होवें।

हिन्दी व्याख्या– जिस मातृभूमि के मननशील मनुष्यों के मध्य में उच्चता तथा नीचता रहने पर भी परस्पर अत्यन्त ही समता और मैत्रीभाव है, जो पृथ्वी, विभिन्न रोगों की निवारक अनेक गुणयुक्त औषधियों को धारण करती है वह पृथ्वी हम उपासकों के लिए समृद्धि के द्वारा विस्तृत होवें तथा हमारे लिये अनुकूल होवें।

संस्कृत व्याख्या– यस्याः पृथिव्याः मननशीलजनानां मध्ये श्रेष्ठत्वा श्रेष्ठत्ववैषम्येऽपि बहु ऐक्यं मैत्री वा अस्ति। या पृथिवी विविधरोगनिवारणसमार्थ्यवतीन् औषधीन् धारयति। सा अस्माकमुपासकानां कृते समृद्धियुक्ता भवन् अनुकूला भवेत्।

टिप्पणी– बध्यतः:– मध्य + तसिल् प्रत्यय। **असंबाधम्**– न संबाधम् नञ् तत्पुरुष। **मानवानाम्**– मनु + अण् = मानव + षष्ठी बहुवचन। **ओषधीः**:– ओसं दधातीति। **बिभर्ति**– √भृ + लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **प्रथताम्**– √पृथ् विस्तृत होना + लोट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **राध्यताम्**– √राध् सिद्ध करना+लोट्, प्रथमपुरुष एकवचन।

छन्द– त्रिष्टुप्।

यस्यां समुद्र उत् सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥ 3॥

अन्वय– यस्यां समुद्रः सिन्धु उत् आपः (सन्ति)। यस्यां कृष्टयः अन्नं संबभूवुः। यस्याम् इदं प्राणत् एजत् जिन्वति। सा भूमिः नः पूर्वपेये दधातु।

शब्दार्थ– यस्याम् = जिस पृथ्वी पर। **समुद्रः** = समुद्र। **सिन्धु** = नदियाँ। **उत्** = तथा। **आपः** = जल– संरक्षण के साधन– जलाशय आदि अवस्थित हैं। **यस्याम्** = जिस पृथिवी में। **कृष्टयः** = कृषक। **अन्नम्** = अन्नादि पदार्थ। **संबभूवुः** = उत्पन्न करते थे। **यस्याम्** = जिस पृथ्वी में। **इदम्** = यह। **प्राणत्** = श्वसन क्रियायुक्त सजीव प्राणी। **एजत्** = कम्पनशील, भोग्यादि पदार्थ। **जिन्वति**= संचरण करते रहते हैं। **सा भूमिः** = वह पृथ्वी। **नः** = हम उपासकों को। **पूर्वपेये** = समस्त उपभोग के साधनों में। **दधातु** = स्थापित करे।

हिन्दी व्याख्या-जिस पृथ्वी पर महासागर, नदियाँ तथा जल से भरे हुए जलाशय, तडाग, बंध आदि प्रवाहित होते रहते हैं। जिस पृथ्वी में कृषक, प्रभूत अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करते रहते थे। जिस पृथ्वी में यह जड़चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् संचरणशील है वहीं भूमि हम उपासकों में समस्त भोग एवं ऐश्वर्य के पदार्थों को स्थापित करें अर्थात् हमें वे समस्त पदार्थ प्रदान करे।

संस्कृत व्याख्या- यस्यां पृथिव्यां समुद्राः, नदाः नद्यः, जलान्विताः जलाशयाः वा प्रवहन्ति। यस्याञ्च पृथिव्यां कृषका प्रभूतकृषिजन्यपदार्थान् उत्पादयन्ति स्म। यस्यां पृथिव्यां इदं जड़चेतनात्मकं जगत् संसरति। सा भूमिः अस्मभ्यम् उपासकेभ्यः समस्तान् भौगैश्वर्यपदार्थान् स्थापयतु।

टिप्पणियाँ- **समुद्रः**-समभिद्रवन्ति अस्मिन्नापः। सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि। समुन्नतीति वा-यास्क अर्थात् जिसमें सभी जल संचरण करते हैं अथवा जिसमें सभी जलचर प्राणी प्रसन्न रहते हैं उसे 'समुद्र' कहते हैं।

सिन्धुः- √स्यन्द् बहना + उ प्रत्यय। **उत्**- समुच्चयार्थीय निपात है।

अन्नम्- √अद् खाना + क्त। **एजत्**- √एज् कांपना + शतृ।

कृष्टयः- √कृष् खोदना + क्तिन्- कृष्टि + प्रथमा बहुवचन।

जिन्वति- √जिन्व् चलना + लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

प्राणत्- प्र + √अन् श्वांस लेना + शतृ प्रत्यय। **दधातु**- √धा + लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

छन्द-त्रिष्टुप्।

यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥ 4॥

अन्वय- यस्या पृथिव्याः चतस्त्रः प्रदिशः (सन्ति)। यस्यां कृष्टयः अन्नं संबभूवुः। या प्राणत् एजत् बहुधा विभर्ति। सा भूमिः नः गोषु अन्ने अपि दधातु।

शब्दार्थ- **यस्या** = जिस। **पृथिव्याः** = पृथिवी की। **चतस्त्रः प्रदिशः** = चार दिशाएं हैं। **यस्याम्** = जिस पृथ्वी में। **कृष्टयः** = किसान। **अन्नम्** = विविध अन्नादि पदार्थ। **संबभूवुः** = उत्पन्न करते थे। **या** = जो। **प्राणत् एजत्** = चेतन और जड़ रूप जगत् को, **बहुधा** = अनेक प्रकार से। **विभर्ति** = धारण करती है। **सा भूमिः** = वह भूमि। **नः** = हम उपासकों को। **गोषु** = गो आदि पशुधनों में तथा। **अन्नेऽपि** = अन्नादि कृषिजन्य धनों में। **दधातु** = स्थापित करें।

हिन्दी व्याख्या- जिस पृथिवी की पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाएँ हैं जिसमें किसान विविध अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करते थे तथा जो समस्त जड़चेतनात्मक जगत् को अन्नजल प्रदानादि द्वारा अनेक प्रकार से धारण करती है। वह पृथ्वी हम उपासकों को गो आदि पशुओं तथा अन्नादि कृषि पदार्थों को प्रभूत प्रदान करें।

संस्कृत व्याख्या- यस्याः पृथिव्याः प्राची आदयः चतस्त्रः प्रदिशः विद्यन्ते। यस्यां कृषकाः विविधान्नादिकृषिजन्यपदार्थान् उत्पादयन्ति स्म। या च इदं जड़चेतनात्मकपदार्थान् अन्नपानप्रदानादिद्वारा बहुधा धारयति। सा पृथिवी अस्मभ्यं उपासकेभ्यः गवादीन् पशून्, अन्नादि पदार्थान् प्रभूतत्वेन स्थापयतु।

टिप्पणियाँ- **चतस्त्रः**- चतुर् + प्रथमा बहुवचन, स्त्रीलिंग।

प्रदिशः- प्र + √दिश् इंगित करना + क्विप्, प्रथमा बहुवचन।

छन्द- त्रिष्टुप्।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विंचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भग वर्चः पृथिवी नो दधातु॥ 5॥

अन्वय- यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः विचक्रिरे। यस्यां देवाः असुरान् अभ्यवर्तयन्। (या) गवाम् अश्वानां वयसश्च विष्ठा। (सा) पृथिवी नः भगं वर्चः दधातु।

शब्दार्थ- **यस्याम्** = जिस पृथ्वी पर। **पूर्वे** = पूर्व काल के। **पूर्वजनाः** = श्रेष्ठ महापुरुषों ने। **विचक्रिरे** = क्रमण किया। **यस्याम्** = जिस पर। **देवाः** = देवताओं ने। **असुरान्** = असुरों को। **अभ्यवर्तयन्** = पराजित किया था। जो। **गवाम्** = गायों। **अश्वानाम्** = अश्वों की। **वयसश्च** = और पक्षियों की। **विष्ठाः** = विशेष सुख देने का स्थान है, वह। **पृथिवी** = पृथ्वी। **भगम्** = ऐश्वर्य को। **वर्चः** = तेजस्। **नः** = हम उपासकों में। **दधातु** = स्थापित करे।

हिन्दी व्याख्या- जिस पृथ्वी पर प्राचीन श्रेष्ठ महापुरुषों ने विचरण किया था, जिस पर देवताओं ने हिंसक असुरों को पराजित किया था। जो पृथ्वी गायों, अश्वों तथा अन्य पक्षी आदि प्राणियों को विशेष सुख देने का स्थान है, वह पृथ्वी हम उपासकों को धनादि ऐश्वर्य तथा ज्ञानादिजन्य तेजस् प्रदान करें।

संस्कृत व्याख्या- यस्यां पृथिव्यां पुरातनाः श्रेष्ठमहापुरुषाः स्वं स्वं जीवनचर्या कृतवन्तः। यस्यां देवगणाः यज्ञविनाशकहिंसकासुरान् पराजितवन्तः। या च गवाश्वादिपशूनां, सुखप्रदात्री अस्ति। सा पृथ्वी अस्मान् उपासकान् धनादि ऐश्वर्याणि ज्ञानादिजन्य तेजांसि च प्रददातु।

टिप्पणियाँ-**विचक्रिरे**- वि + √कृ + लिट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन।

देवाः- दानात् वा दीपनात् वा द्योतनात् वा-यास्क। अर्थात् जो दान देकर प्रतिदान की कामना नहीं करे अथवा जो चमकता हो अथवा कांतिमान् हो उसे 'देवता' कहते हैं।

असुरान्- न सुराः इति असुराः। **विष्ठा**- वि + √स्था + क्विप्।

अभ्यवर्तयन्- अभि+ √वृत् होना + लङ्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन।

छन्द- त्रिष्टुप्।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥ 6॥

अन्वय-(या) विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगतः निवेशनी (अस्ति)। वैश्वानरं अग्निं इन्द्रऋषभौ बिभ्रती भूमिः नः द्रविणे दधातु।

शब्दार्थ- जो। **विश्वंभरा** = जगत् का पोषण करने वाली। **वसुधानी** = सुवर्ण आदि धनों की। **प्रतिष्ठा** = आधारभूता है। **हिरण्यवक्षा** = सुवर्ण के गर्भ वाली। **जगतः** = चेतनात्मक जगत् को। **निवेशनी** =

निवास प्रदान करती है। वह। **वैश्वानरम्** = वैश्वानर को। **अग्निम्** = अग्नि को। **इन्द्रऋषभौ** = इन्द्र और ऋषभ देवताओं को। **बिभ्रती** = धारण करती हुई। भूमि **नः** = हम उपासकों को। **द्रविणे** = धन में। **दधातु** = स्थापित करे।

हिन्दी व्याख्या- जो पृथ्वी समस्त प्राणियों का पोषण करने वाली, स्वर्ण, रजत आदि वस्तुओं की आधारभूता, स्वर्णमय वक्षस्थल वाली तथा जगत् का निवास स्थान है। वह वैश्वानर, अग्नि, इन्द्र तथा ऋषभ देवताओं को धारण करती हुई, भूमि हम उपासकों में विभिन्न धनों को स्थापित करे अथवा हमें विभिन्न प्रकार के धन प्रदान करें।

संस्कृत व्याख्या- या पृथ्वी सर्वेषां प्राणिनां पोषयित्री, रजतादिधनानां प्रतिष्ठा, सुवर्णमध्या, चेतनात्मकजगतः निवासस्थानमस्ति। सा वैश्वानराग्नीन्द्र ऋषभसंज्ञकान् देवान् धारयन् नः उपासकानां कृते विविधपदार्थरूप धनान् प्रापयतु। अस्मान् विभिन्न धनान् प्रति योजयत्वित्यर्थः।

टिप्पणियाँ- **विश्वंभरा**-विश्व+ √भृ + अच् + टाप्। **प्रतिष्ठा**- प्रति + √स्था + क्विप्। **हिरण्यवक्षा**- हिरण्यं वक्षं यस्याः सा। **निवेशनी**- नि + √विश् प्रवेश करना + ल्युट् +ङीप्। **बिभ्रती**- √भृ + शतृ + ङीप्।

अग्निम्- अग्नि अग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नममानः जो यज्ञ में सर्वप्रथम उत्पन्न होता है- अथवा जो यज्ञ में आगे ले जाया जाता है वह अग्नि है।-यास्क। अग्र + नी = अग्निः।

इन्द्रम्- इरां दारयतीति इन्द्रः। इरां धारयतोति इन्द्रः। अर्थात् जो अन्न को विदीर्ण करता है अथवा अन्न को धारण करता है। वही इरा +दृ = इन्द्र है- यास्क।

छन्द- त्रिष्टुप्।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ 7॥

अन्वय- अस्वप्नः देवाः यां विश्वदानीं मधुप्रियां दुहाम् पृथिवीं भूमिं अप्रमादं रक्षन्ति। सा नः वर्चसा उक्षतु।

शब्दार्थ- **अस्वप्नः** = निद्रा व आलस्य रहित। **देवाः** = देवगण। **याम्** = जिस। **विश्वदानीम्**= समस्त भोगैश्वर्य। **मधुप्रियाम्** = मधुर एवं प्रिय पदार्थों का। **दुहाम्** = दोहन करने वाली। **पृथिवीम्** = विस्तृत। **भूमिम्** = भूमि की। **अप्रमादं** = प्रमाद रहित होकर, अवधान चित्त से। **रक्षन्ति** = रक्षा करते हैं। **सा** = वह भूमि। **नः** = हम उपासकों को। **वर्चसा** = अपने तेज से। **उक्षतु** = सींचे।

हिन्दी व्याख्या-निद्रा, आलस्य, अज्ञानादि दोषों से रहित होकर इन्द्रादि देवगण जिस, समस्त भोगों की प्रदात्री, मधुर एवं प्रिय पदार्थों का दोहन करने वाली विस्तृत भूमि की सावधान चित्त से निरन्तर रक्षा करते रहते हैं। वह भूमि हम उपासकों को अपने तेज से सींचे अर्थात् अपने तजोमय स्वरूप से युक्त करें।

संस्कृत व्याख्या- निद्राज्ञानादिदोषरहिताः देवाः यां भोगैश्वर्यप्रदात्रीं मधुरप्रियपदार्थान् दोहनकर्त्रीं विस्तृतस्वरूपां भूमिम् अनुदिनं सावधानमनसा रक्षन्ति। सा भूमिः अस्मान् उपासकान् स्वतेजसा सिञ्चतु। स्वकीयतेजसान्वितं करोत्वित्यर्थः।

टिप्पणियाँ- **अस्वप्नाः**- स्वप्नेभ्यः रहिताः। यहाँ 'स्वप्न' पद अज्ञान आलस्यादि दोषों का वाचक है। **वर्चसा**- वर्चस् + तृतीया एकवचन।

मधुप्रियाम्- मधुरा च प्रिया च। **अप्रमादम्**- न प्रमादम्-नञ् तत्पुरुष।

रक्षन्ति- √रक्ष् रक्षा करना + लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन।

उक्षतु- √उक्ष् सींचना + लोट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

छन्द- प्रस्तार पंक्ति।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।

यस्या हृदयं परमे व्यामन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥ 8॥

अन्वय- या अग्रे सलिलम् अधि अर्णवे आसीत्। यां मनीषिणं मायाभिः अन्वचरन्। यस्याः पृथिव्याः अमृतं हृदयं परमे व्योमन् सत्येन आवृतम् (अस्ति)। सा भूमिः नः उत्तमे राष्ट्रे त्विषिं बलं दधातु।

शब्दार्थ- **या** = जो पृथ्वी। **अग्रे** = प्रलय काल में। **सलिलम् अधि** = जल के भीतर। **अर्णवे**= क्षारयुक्त समुद्र में। **आसीत्** = थी। **याम्** = जिस पर। **मनीषिणः** = मननशील श्रेष्ठ विद्वानों ने। **मायाभिः** = अपने कुशल क्रिया कलापों से। **अन्वचरन्** = विवरण किया था। **यस्याः पृथिव्याः** = जिस पृथिवी का। **अमृतम् हृदयम्** = अमरणशील अर्थात् सर्वदा सजीव अन्तर्भाग। **परमे व्योमन्** = महत् अकाश में। **सत्येन** = सत्य अर्थात् वास्तविक स्वरूप से। **आवृतम्** = परिव्याप्त है। **सा भूमिः** = वह भूमि। **नः** = हम उपासकों के। **उत्तमे राष्ट्रे** = श्रेष्ठ राष्ट्र में। **त्विषिं बलम्**= श्रेष्ठ कान्ति और बल का। **दधातु** = स्थापित करे।

हिन्दी व्याख्या- जो पृथ्वी, प्रलयकाल में, क्षारयुक्त समुद्र के जल में समाहित थी, जिस पर मननशील श्रेष्ठ विद्वानों ने अपने कुशल क्रिया-कलापों से विचरण किया था। जिस पृथ्वी का अन्तर्भाग सर्वदा अमर है और महान् अन्तरिक्ष में सत्य से परिव्याप्त है। वह भूमि हम उपासकों के उत्तम राष्ट्र में श्रेष्ठ कान्ति और बल स्थापित करे।

संस्कृत व्याख्या- या पृथ्वी प्रलयकाले अर्णवे समुद्रस्य जले संलिप्ता आसीत् यस्यां मनीषिणः विद्वांसः स्वकीयैः क्रिया-कलापैः अन्वचरन्। यस्याः अन्तर्भागः अमृतः महदन्तरिक्षे च सत्येनावृतमस्ति, सा भूमिः अस्माकम् उत्तमे राष्ट्रे कातिं बलं च स्थापयतु।

टिप्पणियाँ- **सलिलम्**- √षल् + इलच् प्रत्यय। **अन्वचरन्**- अनु + √चर् + लङ्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन। **व्योमन्**- व्योमनि का वैदिक रूप। **आवृतम्**- आ+ वृ + क्त। **राष्ट्र** - √राज् दीप्त होना + ष्ट्रन् प्रत्यय। **दधातु**- धा + लोट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्द- षट्पदा विराट्।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ ९॥

अन्वय– यस्यां परिचराः आपः समानी अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। सा भूमिः भूरिधारा पयः नः दुहाम्। अथ वर्चसा उक्षतु।

शब्दार्थ– **यस्याम्** = जिस पृथ्वी में। **परिचराः** = चारों ओर घूमने वाले सन्यासी जन। **आपः** = सर्वत्र क्षरित होने वाले जल। **समानी** = समान भाव से। **अहारात्रे** = रात-दिन। **अप्रमादम्** = बिना आलस्य के। **क्षरन्ति** = विचरण करते हैं या प्रवाहित होते रहते हैं। **सा भूमिः** = वह पृथ्वी। **भूरिधारा** = अनेक प्रकार के पदार्थों वाली। **पयः** = ऐश्वर्य धारा को। **नः** = हम उपासकों को। **दुहाम्** = प्रदान करें। **अथ** = तथा। **वर्चसा** = अपने तेज से। **उक्षतु**= सींचे।

हिन्दी व्याख्या– जिस पृथ्वी में सर्वत्र विचरणशील सन्यासीजन तथा जल समानभाव से दिनरात, आलस्य रहित होकर विचरण करते रहते हैं अथवा प्रवाहित होते रहते हैं। वह भूमि अनेक पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य धारा को हम उपासकों के लिये प्रदान करें तथा अपने तेज से हमें आप्लावित करें।

संस्कृत व्याख्या– यस्यां पृथिव्यां सन्यासिनः, जलानि च समत्वेन अहोरात्रे प्रमादं विना विचरन्ति, प्रवहन्ति वा। सा भूमिः साधनविशेषैर्युक्तां ऐश्वर्यधारां अस्मभ्यं उपासकेभ्यः प्रददातु तथा च स्वकीयेन तेजसा अस्मान् आप्लावितं करोतु।

टिप्पणियाँ– **परिचराः**– परि+√चर् विचरणे+अच् = परिचर, प्रथमा बहुवचन। **अहोरात्रे**– अहश्च रात्रिश्च – द्वन्द्व समास। **अप्रमादम्**– न प्रमादम्–नञ् तत्पुरुष। **क्षरन्ति**– √क्षर् क्षरणे + लट्, प्रथमपुरुष बहुवचन। **दुहाम्**– √दुह् दुहना + लोट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **उक्षतु** – √उक्ष् सिंचने + लोट् लकार प्रथमपुरुष, एकवचन।

छन्द– परा अनुष्टुप्।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः॥

सा ना भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥ 10॥

अन्वय– याम् अश्विनौ अमिमाताम्। यस्यां विष्णुः विचक्रमे। शचीपतिः इन्द्रः यां आत्मने अनमित्रां चक्रे। सा भूमिः माता पुत्राय (इव) मे पयः विसृजताम्।

शब्दार्थ– **याम्** = जिस पृथ्वी को। **अश्विनौ** = अश्विनी देवताओं ने। **अमिमाताम्** = मापा था। **यस्याम्** = जिस पर। **विष्णुः** = विष्णु देवता ने। **विचक्रमे** = क्रमण किया था। **शचीपतिः इन्द्रः** = शक्तियों के स्वामी इन्द्र ने। **याम्** = जिस को। **आत्मने** = स्वयं के लिये। **अनमित्राम्** = शत्रुरहित। **चक्रे** = बना दिया था। **सा भूमिः** = वह भूमि। **माता पुत्राय** = जिसप्रकार माता पुत्र के लिए दुग्ध स्रवित करती है, उसी प्रकार। **मे** = मुझ अथर्वा के लिये। **पयः** = अन्नादि भोग्य पदार्थ। **विसृजताम्** = समुत्पन्न करे।

हिन्दी व्याख्या– जिस पृथ्वी को अश्विनी देवताओं ने मापा था, विष्णु देवता ने जिस पर प्रसिद्ध तीन क्रमण किये थे। शक्तिशाली इन्द्र ने जिसको स्वयं के लिये शत्रुरहित कर दिया था। वही पृथ्वी हम

उपासकों के लिए अन्नादि भोग्य पदार्थ उसी प्रकार उत्पन्न करें जिस प्रकार माता पुत्र के लिए दुग्ध स्त्रवित करती है।

संस्कृत व्याख्या– यां पृथिवीं अश्विनौ मापनं कतवन्तौ। विष्णुः देवता प्रसिद्धानि त्रिविधक्रमाणि कृतवान्। शक्तिशाली इन्द्रः यां आत्मने शत्रुरहितां कृतवान्। सा भूमिः तथैव उपासकेभ्यः फलप्रदात्री भवेत् यथा माता पुत्राय दुग्धमुत्पादयति।

टिप्पणियाँ– **अमिमाताम्**– √माङ् नापना + लङ्लकार प्रथमपुरुष द्विवचन। **विचक्रमे**– वि + √क्रम क्रमणे + लिट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। **चक्रे**– √कृ + लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **अनमित्रां**– न अमित्राम्। **विसृजताम्**– वि+√सृज् विसर्गे + लोट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **माता**– √माङ् मापने + तृच् = मातृ प्रथमा, एकवचन।

छन्द– षट्पदा जगती।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी श्यानमस्तु।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजितोऽहता अक्षतोऽध्यैष्ठां पृथिवीमहम्॥ 11॥

अन्वय– हे पृथिवी! ते गिरयः, हिमवन्तो पर्वताः, अरण्यं च श्योनम् अस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां, इन्द्रगुप्तां भूमिं, पृथिवीं अहम् अजितः अहतः अक्षतः अध्यैष्ठाम्।

शब्दार्थ– हे पृथिवी! **ते** = तुम्हारे। **गिरयः** = पर्वत। **हिमवन्तः** = हिम से आच्छादित। **पर्वताः**= पर्वत। **अरण्यं च** = और अरण्य। **श्योनम्**= सुख देने वाले। **अस्तु** = होवें। **बभ्रुम्** = भूरे वर्ण की। **कृष्णाम्** = कृष्णवर्ण की अथवा कर्षण के योग्य। **रोहिणीम्** = लाल वर्ण की अथवा वृक्षों के रोहण वाली। **विश्वरूपाम्** = अनेक रूपों वाली। **ध्रुवाम्** = स्थिर। **इन्द्रगुप्ताम्**= इन्द्र द्वारा रक्षित। **पृथिवीम्** = विस्तृत। **भूमिम्** = पृथ्वी में। **अजितः** = अजेय। **अहतः** = शत्रुओं द्वारा अहिंसित। **अक्षतः** = क्षत (घाव आदि) से रहित। **अहम्**= मैं अथर्वा ऋषि। **अध्यैष्ठाम्** = स्थापित हो सकूं।

हिन्दी व्याख्या– हे पृथ्वी देवी! तुम्हारे विशाल पर्वत, हिमाच्छादित पर्वता शिखर तथा विस्तृत वन श्रृंखला सुख देने वाले होवें। भूरे वर्ण की, कर्षणयोग्य, वृक्षों को स्वयं पर रोहित करने वाली, अनेक रूपों में अवस्थित, स्थिर, इन्द्र द्वारा रक्षित इस विस्तृत भूमि का मैं अथर्वा ऋषि, शत्रुओं द्वारा अजेय, अहिसित, अक्षत होकर स्वामी बन जाऊँ अर्थात् युद्धादि संघर्ष के बिना भी भूमि का अधिपति हो जाऊँ।

संस्कृत व्याख्या– हे पृथिवी! ते पर्वतशिखराणि, हिमवन्तः पर्वताः, नद्यः, उपासकेभ्यः सुखप्रदातारः भवन्तु। तां बभ्रुवर्णां, कर्षणयोग्यं, वृक्षादिरोहण शीलां, अनेकरूपां, स्थिरां दृढां वा, इन्द्ररक्षितां, विस्तृतां भूमिम् अहमर्थवा ऋषिः स्वामी भूयासम्। कीदृशऽहम् शत्रुभिः अजितः, अक्षतः व्रणादि रहितः अहतः तादृशः इत्यर्थः।

टिप्पणियाँ– **गिरयः**– गिरिः समुद्गीर्णो भवति–यास्क। अर्थात् जो उभरा हुआ होता है वह 'गिरि' कहलाता है। **पर्वताः**– पर्ववान् पर्वतः–यास्क। जो पोरों (स्तरों) से अन्वित हो उसे पर्वत कहते हैं।

हिमवन्तः– हिम + मतुप् = हिमवत् + प्रथमा बहुवचन। **इन्द्रगुप्ताम्**– इन्द्रेण गुप्ताम्। **रोहिणीम्**– रोहित + ङीप्। **कृष्णाम्**– √कृष् कर्षणे + क्त प्रत्यय + टाप् प्रत्यय।

विशेष– इस मंत्र में ऋषि अथर्वा ने पृथ्वी के विविध स्वरूपों का वर्णन किया है। पृथ्वी की मिट्टी भिन्न-भिन्न वर्णों की होती है। अतः उसके पृथक्-पृथक् विशेषण दिये गये हैं।

छन्द– षट्पदा विराट्।

यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।

तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥ 12॥

अन्वय– हे पृथिवी! यत् ते मध्यं यच्च नभ्यं (अस्ति)। या ते ऊर्जः तन्वः संबभूवुः। तासु नः अभिधेहि, नः पवस्व। भूमिः माता अहं पृथिव्याः पुत्रः, पर्जन्यः पिता। स उ नः पिपर्तु।

शब्दार्थ– हे पृथिवी! **यत् ते** = जो तुम्हारा। **मध्यम्** = मध्य का स्थान है। **यच्च** = तथा जो। **नभ्यम्** = नाभिस्थल या केन्द्र है। **या ते** = जो तुम्हारा। **ऊर्जः तन्वः** = बलयुक्त या तेजोमय शरीर। **संबभूवुः** = उत्पन्न हुए है। **तासु** = उन बलान्वित शरीरों में। **नः**= हम उपासकों को। **अभिधेहि** = प्रदान कीजिये। **नः** = हम उपासकों की ओर। **पवस्व**= प्रवाहित हो। **भूमिः माता** = भूमि हमारी माता है। **अहम्** = मैं। **पृथिव्याः** = इस पृथ्वी का। **पुत्रः**= पुत्र हूँ। **पर्जन्यः** = मेघ। **पिता** = पालन कर्ता है। **स** = वह मेघ। **उ** = अवश्य ही का। **नः** = हम उपासकों का। **पिपर्तु** = पालन करे।

हिन्दी व्याख्या– हे पृथ्वी! जो तुम्हारा मध्यवर्ती भाग है तथा जो केन्द्र बिन्दु है तथा जो तुम्हारे ऊर्जायुक्त तेजोमय अन्नादि पदार्थ उत्पन्न हुए है, उनमें हम उपासकों को अन्वित कीजिये अर्थात् उनसे हमें संयुक्त कीजिये, हम उपासकों के लिये आप अन्नादि भौतिक पदार्थों से प्रवाहित हो जाओ। भूमि हमारी माता है, मैं उस विस्तृत पृथ्वी का पुत्र हूँ, पर्जन्य पालक है, वह हम उपासकों का पालन करें।

संस्कृत व्याख्या– हे पृथिवी! यत् ते मध्यवर्ती स्थानमस्ति यच्च केन्द्रमस्ति। ते यानितेजोमयशरीराणि अन्नपानप्रस्तरादीनि समुत्पन्नानि अभवन्। तेषु शरीरेषु पदार्थेषु वा अस्मान् उपासकानन्वितान् कुरू। तानस्मभ्यं प्रददात्वित्यर्थः। अस्मभ्यं स्तोतृभ्यः अन्नादिपदार्थैः प्रवहतु। भूमिः अस्माकं उपासकानां मापनेन आश्रयेणवा माता अस्ति। अहं अस्याः पृथिव्याः पुत्रो अस्मि। पालनेन पर्जन्यः पिता इति। स निश्चयेन अस्माकं प्रपिपालयेत्।

टिप्पणियाँ-तन्वः– √तन् विस्तारे + उ प्रत्यय + प्रथमा बहुवचन। **उ**– निश्चयार्थीय निपात। **माता**– √माङ् माने + तृच्। **धेहि**– √दुह् लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन। **पिता**– √पा रक्षणे + तृच् प्रत्यय। **पिपर्तु**– पृ पालन पूरणयोः + लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्द– पंचपदा शक्वरी।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्या यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।

| | | |

यस्यां मीयन्त स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।

| |

सा ना भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥ 13॥

अन्वय– यस्यां भूम्यां वेदिं परिगृह्णन्ति। यस्यां विश्वकर्माणः यज्ञं तन्वते। यस्यां पृथिवां स्वरवः मीयन्ते, पुरस्तात् ऊर्ध्वाः शुक्राः आहुत्याः (दीयन्ते)। सा वर्धमाना भूमिः न वर्धयद्।

शब्दार्थ– **यस्यां भूम्याम्** = जिस भूमि पर। **वेदिम्** = यज्ञ वेदि को। **परिगृह्णन्ति** = निर्माण करते हैं, बनाते हैं। **यस्याम्** = जिस पर। **विश्वकर्माणः** = जगत् का निर्माण करने वाले जन। **यज्ञम्** = सृष्टि यज्ञ का। **तन्वते** = विस्तार करते हैं। **यस्याम् पृथिव्याम्** = जिस पृथ्वी में। **स्वरवः** = यज्ञस्तूप। **मीयन्ते**= गाड़े जाते हैं। **पुरस्तात्** = पूर्व दिशा स। **ऊर्ध्वाः शुक्राः** = श्रेष्ठ एवं श्वेत। **आहुत्याः** = आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। **सा** = वह। **वर्धमाना भूमिः** = वृद्धि को प्राप्त होती हुई भूमि। **नः** = हम उपासकों के लिए। **वर्धयद्**= विस्तृत होवें।

हिन्दी व्याख्या– जिस भूमि पर ऋषि आदि महापुरुष यज्ञवेदि का निर्माण करते हैं, जिस पर सृष्टि का निर्माण करने वाले देवता आदि सृष्टि यज्ञ का विस्तार करते हैं। जिस पृथ्वी पर यज्ञस्तूप गाड़े जाते हैं तथा पूर्व की ओर से श्रेष्ठ व शुभ्र आहुतियाँ प्रदान करते हैं वहीं वृद्धि को प्राप्त होती हुई भूमि हम उपासकों के लिए विस्तृत परिमाण वाली होवें।

संस्कृत व्याख्या– यस्यां पृथिव्यां ऋषयः यज्ञवेदिं समुत्पादितवन्तः। यस्यां सृष्टिकर्तारः देवताः सृष्टियज्ञं विस्तारितवन्तः। यस्यां पृथिव्यां यज्ञस्तम्भाः मीयन्ते। शुक्राश्च आहुतयः पूर्वतः दीयन्ते। सैव वर्धमाना पृथिवो अस्मभ्यमुपासकेभ्यः विस्तृतपरिणामशीला भवेत्।

टिप्पणियाँ– **परिगृहणन्ति**– परि + √ग्रह् + लट्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन।

यज्ञम्– द्रव्यं देवता त्यागः– बादरायण। **तन्वते**– √तनु विस्तारे + लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन, कर्मवाच्य। **मीयन्ते**– √माङ् नापना + यक् + लट्लकार प्रथम पुरुष बहुवचन। **वर्धमाना**– √वृध् बढ़ना + शानच्। **वर्धयत्**– √वृध् + विधिलिङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्द– पंचपदा शक्वरी।

| | | |

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।

|

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥ 14॥

अन्वय– हे पृथिवि! यः नः द्वेषत्, यः पृतन्यात्, यः मनसा अभिदासात् यः वधेन (युक्तः)। पूर्वकृत्वरि भूमे। नः तं रन्धय।

शब्दार्थ– हे पृथिवि! **यः**=जो व्यक्ति। **नः**= हम उपासकों से। **द्वेषत्**=द्वेष करता है। **यः**= जो। **पृतन्यात्**= शरीरिक बल से हमें पराभूत करता है। **यः मनसा**= जो, मन से। **अभिदासात्**= हमें हिंसित या क्षीण करना चाहता है। **यः**= जो। **वधेन**= हिंसामय कार्यों से युक्त है। **पूर्वकृत्वरि भूमे** = पूर्व काल में शत्रुविनाशिका हे भूमि। **नः** = हम उपासकों के लिए। **तम्**= उस हिंसक शत्रु को। **रन्धय** = विनाश करो।

हिन्दी व्याख्या- हे पृथ्वी! जो, हम उपासकों से द्वेष करता है, जो हिंसक बल से हमें पराभूत करना चाहता है, जो मन से हमारा क्षय करना चाहता है तथा जो हिंसक कर्मों से अन्वित है। पूर्वकाल में शत्रुओं का विनाश करने वाली हे भूमि! हम उपासकों के लिये उन शत्रुओं का विनाश करो।

संस्कृत व्याख्या- हे पृथिवि देवि! यः जनः अस्मभ्यं द्विषति, द्रुह्यति, सैन्यबलेनाभिभवितुमिच्छति। मनसा यः हिंसितुमिच्छति। यः हिंसाकार्ये संलग्नोऽस्ति। हे पूर्व काले शत्रुविनाशिका पृथिवि! अस्मभ्यम् उपासकेभ्यः तान् हिंसकान् शत्रुन् विनाशय।

टिप्पणियाँ- **द्वेषत्**-√द्विष् द्वेष करना+लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन वैदिकरूप।

अभिदासात्- अभि + √दस् क्षीण करना। **रन्धय**- √रन्ध् विनष्ट करना + लोट्लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

छन्द- महाबृहती।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥ 15॥

अन्वय- पृथिवि! मर्त्याः त्वज्जाताः त्वयि चरन्ति। त्वं द्विपदः चतुष्पदः बिभर्षि। येभ्यः मर्तेभ्यः उद्यन् सूर्यः रश्मिभिः अमृतं ज्योतिः आतनोति, इमे पञ्च मानवाः तव (सन्ति)।

शब्दार्थ- **पृथिवि!** = हे पृथिवि। **मर्त्याः** = जो मरणधर्मा मनुष्यादि। **त्वज्जाताः** = तुम से ही उत्पन्न होते हैं। **त्वयि** = तुम्हारे ऊपर ही। **चरन्ति** = विचरण करते हैं। **त्वम्** = तुम ही। **द्विपदः** = दो पैर वाले मनुष्य पक्षी आदि प्राणियों। **चतुष्पदः** = चार पैरो ंवाले गाय आदि पशुओं को। **बिभर्षि** = स्वयं पर धारण करती हो। **येभ्यः मर्तेभ्यः** = जिन मरणशील प्राणियों के लिये। **उद्यन्** = उदित होता हुआ। **सूर्यः** = सूर्य। **रश्मिभिः** = किरणो से। **अमृतं ज्योतिः** = अमृतमय प्रकाश। **आतनोति**= विस्तृत करता है। **इमे** = ये। **पञ्च मानवाः** = पांच प्रजातियों वाले अनु, यदु, तुर्वसु, पुरु, द्रुह्यु आदि मानव। **तव** = तुम्हारी ही संततियाँ हैं।

हिन्दी व्याख्या- हे पृथ्वी! मरणशील मनुष्यादि तुम से ही उत्पन्न होते हैं तुम पर ही विचरण करते हैं। तुम्हीं दो पैरों वाले मनुष्यादि तथा चार पैरों वाले पशुओं को धारण करती हो। जिन मनुष्यों के लिये उदित होता हुआ सूर्य किरणों द्वारा अमृतमय प्रकाश विस्तृत करता है। ये पांच प्रजातियों वाले अनु, युदु, तुर्वसु, पुरु तथा द्रुह्यु तुम्हारी ही संततियाँ हैं।

संस्कृत व्याख्या- हे पृथिवी! मरणधर्माः मनुष्याः त्वत् एव जाताः समुत्पन्नाः। त्वमेव एतान् द्विपदमनुष्यादीन् चतुष्पद्पश्वादीन् धारयति। येभ्यः मरणधर्मेभ्यः प्राणिभ्यः उदितः सन् सूर्यः स्वकिरणैः अमृतमयज्योतिः विस्तारयति। इमे पञ्च अनु यदु आदि प्रजातयः तवैव प्रजाः सन्ति।

टिप्पणियाँ- **जाताः**- √जन् + क्त। प्रथमा बहुवचन। **चरन्ति**- √चर् + लट्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन। **बिभर्षि**- √भृ + लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन। **मानवाः**- मनु + अण्। **उद्यन्**- उत् + √यम् + शतृ। **आतनोति**- आ + √तन् लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

छन्द- पंचपदा शक्वरी।

। । । ।

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥ 16॥

अन्वय– पृथिवि! नः ताः समग्रा प्रजाः संदुहताम्। मह्यम् मधु वाचः धेहि।

शब्दार्थ– पृथिवि! **नः** = हम उपासकों को। **समग्रा** = समस्त। **प्रजाः** = उत्तम संततियाँ। **संदुहताम्** = प्राप्त हो। **मह्यम्** = मुझ अथर्वा के लिये। **मधु वाचः** = मधुर वाक्। **धेहि** = प्रदान करो।

हिन्दी व्याख्या– हे पृथिवी! हम उपासकों के लिये आप द्वारा उत्पन्न गौ आदि पशु, पक्षी तथा समस्त प्रजातियों वाली सम्पूर्ण प्रजाएँ प्राप्त होवे। मुझ, अथर्वा ऋषि के लिये आप मधुर वाक् प्रदान कीजिये जिससे कि मैं सभी के प्रति समुचित व्यवहार कर सकूं।

संस्कृत व्याख्या– हे पृथिवि देवि! अस्मभ्यम् उपासकेभ्यः भवत्याः समुत्पन्नः गौपक्षी आदयः सर्वाः च पजाः प्राप्ताः भवेयुः। भवती मह्यम् अथर्वा ऋषिकृते मधुरा श्रेष्ठा च वाक् प्रददातु। यतः अहं सर्वेषां प्राणिनां प्रति सम्यक् व्यवहारयुक्तः भवेयम्।

टिप्पणियाँ– **प्रजाः**– प्र+√जन् उत्पन्न होना+ड प्रत्यय+टाप् प्रत्यय (स्त्रीलिंग)।

संदुहताम्– सम् + √दुह् + लाट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

धेहि– √दुह् + लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

छन्द– साम्नी त्रिष्टुप्।

। । ।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।

। ।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥ 17॥

अन्वय– विश्वस्वम् ओषधीनां मातरं ध्रुवां पृथिवीं धर्मणा धृतां शिवां स्योनां भूमिं विश्वहा अनुचरेम।

शब्दार्थ– **विश्वस्वम्** = समस्त। **ओषधीनाम्** = ओषधियों की। **मातरम्**= माता, उत्पादिका। **ध्रुवाम्** = स्थिर। **पृथिवीम्** = विस्तृत। **धर्मणा** = सत्य आदि धर्म से। **धृताम्** = धारण की गई। **शिवाम्** = कल्याणमयी। **स्योनाम्** = सुखप्रदात्री। **भूमिम्** = पृथ्वी की (हम उपासक जन) **विश्वहा** = सर्वदा। **अनुचरेम** = अनुसरण करें अथवा परिचर्या करें।

हिन्दी व्याख्या– सम्पूर्ण ओषधियों की उत्पादिका, स्थिर, विस्तृत स्वरूप वाली, सत्य आदि धर्म से रक्षित, कल्याणमयी, सुखप्रदात्री पृथ्वी की हम उपासक जन सर्वदा ही अनुसरण करें। अभिप्राय है कि पृथ्वी ही समस्त अन्नादि ओषधियों की जनक है। सत्य, ज्ञान,यज्ञ आदि धर्म इस पृथ्वी के धारक तत्त्व हैं। उस सुखप्रदात्री पृथ्वी की हम स्तोता जन सर्वदा ही परिचर्या करते रहें।

संस्कृत व्याख्या–समस्तानाम् अन्नादिओषधीनां समुत्पादिका, स्थिरा, विस्तृता, सत्यादिधर्मरक्षिता, कल्याणमयी सुखदात्री पृथिवी सर्वदा एव अस्मभ्यं भोगान् प्रददातु। वयमपि स्तोतारः अस्याः परिचर्यां अनुचरेम।

टिप्पणियाँ– **मातरम्**– √माङ् मायने + तृच्= मातृ + द्वितीया एकवचन।

ओषधीनाम्– ओसं दधातीति ओषधीः। **धृताम्**– √धृ + क्त + टाप्।

अनुचरेम– अनु + √चर् + विधिलिंग लकार उत्तम पुरुष बहुवचन।

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।

सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥ 18॥

अन्वय– महत् सधस्थं महती (च) बभूविथ। ते महान् वेगः एजथुः वेपथुः। इन्द्रः (त्वां) अप्रमादं रक्षति। हे भूमे। सा हिरण्यस्येव संदृशि नः प्र रोचय। न कश्चन मा द्विक्षत्।

शब्दार्थ– **महत्** = विशाल। **सधस्थम्** = परिणाम वाला स्वरूप है। **महती** = महान्। **बभूविथ** = उत्पन्न हुई थी। **ते** = तुम्हारा। **महान् वेगः** = श्रेष्ठ गति। **एजथुः** = सूर्य का परिक्रमण। **वेपथुः** = स्वयं के अक्ष पर घूर्णन है। **इन्द्रः** = इन्द्र देवता तुम्हारी। **अप्रमादम्** = आलस्य रहित होकर। **रक्षति** = रक्षा करते हैं। **हे भूमे** = हे भूमि। **सा** = वही प्रसिद्ध (आप)। **हिरण्यस्येव** = स्वर्ण सदृश। **संदृशि** = प्रतीत होती हुई। **नः** = हम उपासकों के लिए। **प्र रोचय** = अन्नादि पदार्थों एव रत्नादि धनों से दैदीप्ययमान हो जाओ। **न** = हम स्तोताओं स। **कश्चन्** = कोई भी। **मा द्विक्षत्** = द्वेष नहीं करे।

हिन्दी व्याख्या– यह पृथ्वी विशाल परिमाण वाली है वह महान् स्वरूप में ही उत्पन्न हुई। हे पृथ्वी! तुम्हारी श्रेष्ठ गति परिक्रमण तथा घूर्णन है। इन्द्र देवता आलस्य रहित होकर सर्वदा तुम्हारी रक्षा करते हैं। हे भूमि! वही प्रसिद्ध आप स्वर्ण सदृश दिखाई देती हुई हम उपासकों के लिये अन्नादि एवं धनादि से दीप्तिमान हो जाओ। हम स्तोताओं से कोई भी द्वेष नहीं करे।

संस्कृत व्याख्या– इयं पृथिवी महत् परिमित स्वरूपा अस्ति, सा महदवस्थायामेव समुत्पन्ना बभूव। हे पृथिवि! तव श्रेष्ठा गतिः परिक्रमणघूर्णनस्वरूपा अस्ति। इन्द्रः प्रमादरहितः सन् सर्वदा त्वां रक्षति। हे भूमे! सैव त्वं स्वर्णसदृशी प्रतीता अस्मभ्यं स्त्रोतृभ्यः अन्नादिपदार्थैः रत्नादि धनैश्च प्रकर्षेण रोचय। अस्मभ्यं स्तुतिकर्त्रेभ्यः कोऽपि मा द्विषत्।

टिप्पणियाँ– **सधस्थम्**–सह + स्था + क्विप्। **अप्रमादम्**– न प्रमादम्। **बभूविथ**– √भू + लिट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन। **एजथुः** – √एज् कांपना। **वेपथुः**– √वेप् कांपना। **रक्षति**– √रक्ष + लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **प्ररोचय**– प्र+√रूच् दीप्तिमान होना + लोट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन। **द्विक्षत्**– √द्विष् द्वेष करना + लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। **मा**–निषेधार्थीय निपात्।

छन्द– षट्पदा त्रिष्टुप्।

9.4 पारिभाषिक शब्दावली

1- **प्राथम्य** – प्रमुखता।
2- **उपजीव्य** – आधारित। आधारभूत।
3- **तन्नियोजक** – उनके कार्यादेश करने वाले।
4- **इतिवृत्त** – सम्पूर्ण वर्णन।
5- **आभिचारिक** – अभिचार (कुटिल आचरण) सम्बन्धित।
6- **आथर्वण युग** – अथर्वसंहिता के युग।

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर निर्धारित कोष्ठक में लिखिये–